International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 277-279

ज़किया रफ़त कृत'' ये ख़लिश कहां से होती 'का शिल्प पक्ष

चरत सिंह

गांव–कोटली, जिला सिरसा, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

किसी युग का साहित्य अंतर्मुखी हो गया है तो किसी युग का बहिर्मुखी। साहित्य की बिम्बसिक्त संवेदना बहुस्तरीय होती है। कहीं ज़किया रफ़त ने भौतिकवादी जीवन शैली के कारण निज जीवन में व्याप्त अवसाद, तनाव व आत्म संघर्ष को उकेरा है, तो साथ ही राजनैतिक, सामाजिक अवधारणा के विकृत रूप को उजागर किया है। इस नवीन जीवन शैली की भागमभाग, आपाधापी से छटपटाती मनःस्थिति के बिम्ब है, तो कहीं व्यवस्था से अंतर्जन्म कुरूचियां और घिनौनी स्थितियां हैं।'ये खालिश कहां से होती' रचना को पढ़कर पाठक के मस्तिष्क पर व्यक्त किए गए अनुभवों की प्रबल प्रतिक्रिया होगी, जिसे ल्यूकस के शब्दों में 'वह उद्दीप्त हो जाएगा'। 'चक्रव्यूह'कविता से एक उदाहरण देखिए–

'मेरे घर से निकलते
ही रच जाता हैं
एक चक्रव्यूह,
वापिस लौटते ही
मेरा ह्रदय रणक्षेत्र
बन जाता हैं
और मैं इस चक्रव्यूह
को तोड़ने की नाकामयाब
कोशिशों
में जुट जाती हूँ[1]

वस्तुतः कवि के आत्म से पाठक का संबंध स्थापित होने पर पाठक उद्दीप्त होकर कवि प्रभाव को अभिव्यक्त करता है। अतः शैली से अभिप्रेत कवि–विचारों के तात्विक रूप, भाषा–विशिष्टता का स्रोत, मस्तिष्क की प्रतिलिपि, विचारों की वेशभूषा, भाषा की प्रेषण क्षमता, रचना में प्रकट वैयक्तिक विशेषता और आत्मा की मुखावृत्ति से है।उन्होंने अपने मुक्तकों के लिए जिस लघु कलेवर छन्द को अपनाया, उसमें भाषा की चुस्ती, सशक्तता सबसे अध्कि उपेक्षित है। इन्होंने भाष के क्षेत्र में अपनाए जाने वाले अनेक रूपों पर ध्यान दिया और उसका परिमार्जित ढाँचा तैयार कर लिया जिससे परवर्ती कवियों का मार्ग प्रशस्त हो सके।

भाषा की सजावट के लिए सहज शब्दावली का पर्याप्त प्रयोग किया है। शास्त्रीय उपमाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग अनिवार्य ही था। वर्ण्य विषय से सम्बद्ध रति, मिलन, वियोग, संकेत, अभिसार, मान, सुख आदि पारिभाषिक शब्द भी तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि हिन्दी में ये शब्द सीधे संस्कृत से आए हैं। यहाँ पर जकिया रफत द्वारा प्रयुक्त कुछ तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों की सूची दी जाती है जिनमें कहीं–कहीं तो संस्कृत के शब्दों में किसी प्रकार का ध्वनि परिवर्तन न कर केवल संस्कृत की विभक्ति जोड़कर ही अर्ध तत्सम शब्दों की सृष्टि कर ली गई है और कहीं–कहीं संस्कृत शब्दों से बलात् तद्भव शब्दों की सर्जना की गई है।
जैसे 'रिश्तों के इस पार' कविता का की भाशा देखिए–

पाउडर लगाती हैं
वस्त्र बदलती हैं
उसके बालों को
सवारती हैं
फिर तकिये के
सहारे से टिकाकर
उसे बिठा देती हैं,
मॉ उसके नन्हें
क्रिया–कलापों को
निरीह ऑखों से[2]

राजभाषा होने के कारण मुसलमानी शब्द जनता में इतने प्रचलित हो गए थे कि पफारसी के प्राचीन संस्कृतजन्य शब्दों का पूर्णतया लोप हो गया। यहाँ पर उदाहरण स्वरूप कुछ शब्दों की सूची प्रस्तुत हैμ
कवयित्री ने जन–जीवन की सामान्य बोलचाल की भाषा को सरलता, सरसता, लाक्षणिकता, मुहावरे, विरोध मूलकता, लोकोक्ति प्रधान कथ्य गर्भित शैली और नव–संस्कार प्रदान किए साथ ही नई भाषा का सृजन कर युग की आवश्यकता की पूर्ति की। इन्होंने परंपरागत चमत्कार शैली का विरोध कर युगानुकूल परिवेश से उत्पन्न वैयक्तिक संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए नव–भाषा वैशिष्ट्य को प्रस्तुत किया। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं चिन्तन–प्रक्रिया भी है। अतः उसका कवि–व्यक्तित्व के अनुरूप होना वाँछनीय है। सतसई कवियों की भाषा–शैली इस दिशा में सपफल रही। वह विभिन्न पात्रों के कुंठित गत्यात्मक रूप के अनुसार अपना रूपाकार पाकर परिस्थिति तथा मनः स्थिति के प्रकाशन में पूर्ण समर्थ हुई है। ''आभार'' कविता का एक एक उदाहरण देखिए–

'दवा, इंजेक्शन
रक्त व ऑक्सीजन
कर रहे थे
निरीक्षण,
परीक्षण और विश्लेषण
फिर
रोग–निदान,
उठ रहे थे
दुआ के लिए
यह हाथ थे
नर्स से डॉक्टर तक
पैथोलॉजिस्ट से[3]

इन कवियों की भाषा में एंन्द्रिय चेतना की प्रचुरता, अंतर की मूक पीड़ा की वाणी, मनःस्थिति का सूक्ष्म चित्रण तथा भाषा में जीवन का अनुगमन मिलता है। जकिया जी ने निःसंकोच पफारसी–उर्दू के शब्दो का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया है। पफारसी भाषा के प्रयोग में इन कवियों के कई आशय रहे हैं–

- भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा के लिए इन्होंने जन प्रचलित उर्दू–पफारसी शब्दों का प्रयोग किया हैऋ
- शिक्षित अभिजात पात्रों के परिवेश की अभिव्यक्ति के लिएऋ तथा
- पात्रें की मानसिक आंतरिकता को भी अनेक स्थलों पर इन शब्दों के प्रयोग द्वारा गहराया गया है।

कवयित्री ने अपने अनुभवों को अपने–अपने काव्य में चित्रित आलम्बनों की भावनाओं में आरोपित करके जिस शैली एवं शब्दावली को व्यक्त करना चाहा शैली उसके अनुरूप हो गई। वस्तुतः इन वर्णनों में इन कवियों ने अपनी हृदयगत अनुभूतियों को ही अंकित किया है इसी कारण इनकी काव्य–शैली सहज तथा व्यंजनापूर्ण है। काव्य–सृजन–प्रक्रिया एक संश्लिष्ठ मनःव्यापार है जो उन्नयन से पूर्व मन की धारण अवस्था है। भावाभिव्यक्ति से पूर्व मानसिक उद्वेलन से सृजन का स्वरूप तथा आकार रूपायित हो जाता है। मानसिक भावों के उदात्तीकरण की शैली तो मात्र उसका प्रकाशन है। वस्तुतः भावाभिव्यक्ति से पूर्व एक ऐसी सामंजस्यावस्था रहती है जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रतीकों तथा बिम्बों में संवेदनात्मक अनुबंध स्थापित हो जाते हैं जो अंततोगत्वा रूपबद्ध अभिव्यक्ति अथवा शैली संगठन को सम्यक् व्यवस्था देते हैं। यह शैली–संघटन अंतः प्रक्रिया की एक अपूर्व परिणति है। 'सहजानुभूति' तथा मन की 'एकाग्र' अथवा 'तनाव की स्थिति' स्पंदित रहती है।

'ये खालिश कहां से होती' काव्य–रचना जहाँ समकालीन सृजन परम्पराओं के प्रति अनास्था उत्पन्न करती है, वहीं समस्त बहिर्मुख और इतिवृत्तात्मकता के प्रति भी वितृष्णा पैदा करती है। जैसे–

'उसकी टूटी–फूटी
अपाहिज ममता पर
मकड़ी जाला
बुन जाती हैं,
मासूम बिटिया
कोठरी में उसकी
यह दुर्दशा देखकर
व्याकुल हो जाती हैं,
फिर झाड़ू लेकर
अपनी टूटी–फूटी ममता
को झाड़–पोंछकर
व्यवस्थित करके
सोई ममता का
द्वार खटखटाती हैं,[4]

उसमें केवल आत्मकेन्द्रिकता और आत्मप्रतिबद्धता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों को ही शैली का प्राणतत्व मानती है। अतः उनकी काव्य–शैली के सभी उपादान अनुभूति–स्पंदित हैं। यह अनुभूति एक ओर विशुद्ध वैयक्तिक है, दूसरी ओर इसके विविध विधान अभिव्यक्ति के स्तर पर अनुभूत–माध्यम की वेदना के परिणाम हैं। सृजन–प्रक्रिया का आंतरिक संघटन ही इन उपादानों के समन्वयन से संयोजित हुआ है। उनका संपूर्ण अनुभूत अंतःप्रक्रिया में पककर ही शैली के उपादानों में रूपांतरित हुआ। उसके सुनियोजन में इन कवियों की निष्ठाएं अभिवृत्तियां पीड़ा, दमन, मनोभ्रम, दिवास्वप्न, भावग्रंथि, चिन्ता, विभ्रम, अहम् भाव, प्रज्ञा, प्रेरणा तथा ऊब विशेष सक्रिय रही हैं। यह शैली एक ओर सृजन–व्यापार की आंतरिक चेतना से अनुप्राणित है तो दूसरी ओर रूपांतरण की बाह्य चेतना से भी सम्पन्न हुई है। जैसे–

'तुम्हारी दरियादिली और
कर्तव्यनिश्ठा
से प्रभावित होकर
सामान्य से लेकर
विद्वज्जनों की सभा ने
एक स्वर मं
तुम्हें 'सन्त' का
दर्जा दे दिया हैं,[5]

समग्रतः कवयित्री की काव्य–शैली सृजन की प्रक्रियात्मक परिणति है। इसके समस्त काव्य–उपकरण अनुभूति अनुप्राणित और मानसिक संवेगों से स्पंदित है। काव्य–शैली की समग्रता में कवि–व्यक्तित्व की उपस्थिति निर्विवाद है, अनुभूति पक्ष में उसका भोक्ता विद्यमान रहता है। अभिव्यक्ति पक्ष में उसका सर्जक उपस्थित रहता है। उसकी अपनी संवेदनाएँ, भावनाएँ, अनुभूत्यात्मक विकास चक्र में अपनी पार्थिवता से मुक्त हो शुद्ध अनुभूति बन जाती हैं जो विभिन्न प्रतीकों, बिम्बों तथा काव्य–शैली में रूपांतरित तथा संघटित होती हैं।

ज़किया रफ़त कृत 'ये खालिश कहां से होती' काव्य–रचना में प्रतीक–पद्धति नदी, पृथ्वी, सूर्य, पशु–पक्षी, वनस्पति इत्यादि रूपों में अपनाई गई है। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रतीक–योजना का सर्वप्रथम विवेचन वैदिक साहित्य में हुआ है। योगी श्री अरविन्द का अभिमत है कि वैदिक वर्णनों में प्रतीक–पद्धति को पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया गया।यहां अग्नि का प्रयोग सामान्य वस्तुपरक अर्थ में भी किया गया है तथा 'दिव्य संकल्प' के प्रतीकार्थ में भी। उपनिषदों में समस्त सृष्टि अथवा जीव–वनस्पति जगत् को ब्रह्म का विराट रूप बतलाया गया है। 'मुण्डकोपनिषद' में कहा गया है कि ''इन विराट स्वरूप परमेश्वर का अग्नि मस्तिष्क है, चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों नेत्र हैं, समस्त दिशाएं कान हैं, नाना छंद एव) चाओं के रूप में विस्तृत चारों वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, संपूर्ण चराचर जगत हृदय तथा पृथ्वी दोनों पैर हैं। यही परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियों की अंतरात्मा है।'' [6] 'ईशावास्योपनिषद' में संपूर्ण जगत् को ईश्वर से व्याप्त कहा गया है।[7] सांख्य–दर्शन प्रकृति को मूलतः अव्यक्त, अनादि, त्रिगुणात्मक, जड़ एवं जगत् का कारण मानता है जो निष्क्रिय उदासीन परन्तु पूर्ण चैतन्य रूप पुरुष की उपस्थिति मात्र से सक्रिय होकर उसके संयोग से व्यक्त होती हुई जगत् की रचना करती है। [8] प्रकृति एक है तथा पुरुष असंख्य शैवागम के प्रत्यभिज्ञा–दर्शन में भी प्रकृति को सत्व, रज और तम् तीन गुणों की साम्य अवस्था माना गया है। ये गुण क्रमशः सुख, दुःख एवं मोह रूप होते हैं। अनेक पुरुषों के साथ वहां प्रकृति को भी अनेक माना गया है, जो ईश्वर की इच्छा से पुरुषों के साथ संयोग करती हैं। ज़किया रफ़त कृत 'ये खालिश कहां से होती' से एक उदाहरण देखिए–

'जानती हूँ
चलते–चलते
घिस जाएँगे जब

मेरे कल–पुर्ज़े
जंग लगने को
डाल दी जाऊँगी
एक कोने में
अब नये युग का आरम्भ
भोगवादी संस्कृति में
मैं बन बयी हूँ
एक उपभोग की वस्तु।
मेरा मूल्य हैं
मेरी देह
रूप, श्रृंगार, [9]

वेदान्त में प्रकृति एवं पुरुष की द्वैतपरक पृथक सत्ता न मानकर एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता मानी गई है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'प्रतीक' शब्द का अन्वय इस प्रकार किया जा सकता है – ''प्रतीयेत येन इति प्रतीकः'' – जिसके द्वारा किसी अर्थ–विशेष या वस्तु–विशेष की प्रतीति हो वह प्रतीक है।'' स्पष्ट है कि इस अन्वय के अनुसार, प्रतीक वह है जो, अपने से भिन्न, किसी अन्य प्रतीयमान अर्थ का बोध कराता है। इस संबंध में तिलक द्वारा दी गई 'प्रतीक' शब्द की व्याख्या उल्लेखनीय है। वे 'प्रतीक' शब्द की संरचना 'प्रति' तथा 'इक' के योग से मानते हैं जिसका अभिप्राय है – (किसी केद्ध प्रति झुका हुआ। उनके अनुसार – ''जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गोचर और पिफर आगे उस वस्तु का (संपूर्ण सम्यकद्ध ज्ञान हो तब उस भाग को प्रतीक कहते हैं'' [10]। इस दृष्टि से भी प्रतीक अपने भीतर किसी पदार्थ के संकेत छिपाए रखने वाला तत्व है।

इसीलिए संभवतः विभिन्न कोश–ग्रंथों में प्रतीक का अर्थ अंग, अवयव[11], चिह्न, प्रतिरूप, स्थानापन्न वस्तु, मूर्ति, प्रतिमा, प्रतिनिधि[12] आदि बताया गया है। काव्यक्षेत्र में 'प्रतीक' शब्द अंग्रेज़ी के 'सिम्बल' शब्द के पर्याय रूप में प्रचलित है जिसका अभिप्राय संकेत, चिह्न अथवा प्रतिमा लिया जा सकता है। काव्य में प्रयुक्त 'प्रतीक' अभिधार्थवाचीन होकर किसी अन्य अर्थ, भाव, संकल्पना आदि का संकेतक है। प्रत्येक काव्य–सर्जक के व्यक्तित्व से ढली काव्य–भाषा की वक्रताएँ होती हैं। उसमें व्यंजित संवेग विशिष्ट होते हैं, संवेगों की इस विशिष्टता के अनुरूप अभिव्यक्ति की खोज में प्रवृत्त काव्यभाषा उपयुक्त प्रतीकों का चयन और निर्माण करती है। सामान्यतः घटनाएँ तथा व्यक्ति स्वयं में क्षुद्र, क्षणिक और महत्वहीन हैं।

हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक परशुराम चतुर्वेदी जी के अनुसार, फ्प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला कोई चिह्न या प्रतिरूप है। यह उसका एक जीता–जागता एवं पूर्णतः क्रिया प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से, उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।ऋ [13] स्पष्ट है कि प्रतीक अपने समग्र रूप में 'अप्रस्तुत' का ही एक प्रकारांतर है। कवयित्री जकिया जी की प्रतीक संबंधी अवधारणा भी इस दृष्टिकोण की संपोषिका है। उन्होंने प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य का गोचर वस्तु के लिए किया है, जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान, उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।' डॉ. नगेन्द्र भी प्रतीक को एक प्रकार का रूढ़ उपमान मानते हैं। उनका कथन है जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ–विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तब वही प्रतीक बन जाता है। 'मायावी''कविता से एक उदाहरण देखिए–

'मैं एक मानवी नहीं
मायाविनी हूँ
जिसने अपनी मायावी षक्तियों से
तिलिस्मों का ताना–बाना
बुन रखा हैं
जिसमें अनेक
चमत्कारी रहस्यमयी गुफाएँ हैं
बोतल में कैद
जिन है
ऊँची किलेनुमा
इमारते हैं
अभेद्य गढ़ हैं
जादुई घोड़े हैं,[14]

ज़किया रफ़त कृत 'ये खालिश कहां से होती'सपाट दीवारों वाले मकान को पुरुष तथा छज्जे एवं जालियों वाले मकान को स्त्री का प्रतीक माना है।

निष्कर्ष

ज़किया रफ़त कृत 'ये खालिश कहां से होती' की प्रत्येक पंक्ति, उसके प्रत्येक शब्द में प्रतीक–न प्रक्रिया का कोई न कोई आयाम निहित है। किसी काव्य कृति के बाह्य और आभ्यांतर में जो रूपक का भेद है वह प्रतीक के द्वारा एकीकृत हुआ है। ज़किया रफ़त कृत 'ये खालिश कहां से होती' के संदर्भ में विभिन्न आलोचकों द्वारा किए गए किसी भी एक प्रतीक वर्गीकरण को यथावत् ग्रहण करना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'ज़किया ऱफत' ''चक्रव्यूह'' पृ0 53
2. 'ज़किया ऱफत' ''रिश्तों के इस पार'' पृ0 44
3. 'ज़किया ऱफत' ''आभार'' पृ0 116
4. 'ज़किया ऱफत' पृ0 15
5. 'ज़किया ऱफत' ''सहचर'' पृ0 38
6. कल्याण, 2.4.4, उपनिषद् अंक, पृ. 273
7. ईशावास्योपनिषद् प्रथम श्लोक
8. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, संख्या 57, 59–61 एवं 21
9. 'ज़किया ऱफत' ''प्रतिक्षा'' पृ0 10
10. बाल गंगाधर तिलक, गीता–रहस्य, पृ. 435
11. 'अंग प्रतीको{व्यवो' – अमरकोश, मनुष्य वर्ग, श्लोक 70
12. नालन्दा विशाल हिन्दी शब्द–सागर, पृ. 895
13. पं. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ. 146
14. 'ज़किया रफ़त' ''मायावी'' पृ0 67